श्रीत्रिवेणीस्तोत्र, तीर्थराज प्रयाग स्तोत्र, वपनविधि

तथा

संक्षेपतः स्नानविधि ।

भाषा टीका सहित

श्रीमद्धूनीराम तनूज वेदवेदांत पारग
ज्योतिर्वित्

पं० रामावतार शर्मा कृत भाषा सहित
सज्जनों के उपकारार्थ छपवाया ।

मुद्रक-चन्द्रीप्रसाद पाण्डेय, नारायण प्रेस, प्रयाग ।
प्रकाशक-पं० रामावतार शर्मा बक्सीबाज़ार प्रयाग ।
पुण्यार्थ बांटने के लिये ।

॥ श्रीतीर्थराजायनमः ॥

समस्त महानुभावों को विदित हो कि प्रायः आजकल लोग गङ्गा यमुना जी के किनारे और नौका पर भी दतुइन कुल्ला करते हैं सो साधारण जल में भी थूकने से ब्रह्महत्या का पाप लगता है न कि साक्षात् ब्रह्मस्वरूपा में (प्रमाण भारत तथा बालमीकीय रामायण) मनुस्मृति में भी यथा (नाप्सुष्ठीवतनाप्सुमूत्रंपुरीषंष्ठीवनंवासमुत्सृजेत्) म० अ० ४।५६। पानीयदूषकेपाप मित्यादि शास्त्रों में बहुत दोष लिखा है और जिन स्थानों पर आकर श्रीरामचंद्र भरत वशिष्ठादि सम्मानपूर्वक पूजन किये हैं अतएव धार्मिक सज्जनों से प्रार्थना है कि ४ हांथ किनारे तक थूकना या स्थान भ्रष्ट करना बहुत अनुचित है।

शास्त्र में त्रिवेणीतट पर शरीर परित्याग करने का अनंत पुण्य वर्णित है नवेदवचनात्तात इत्यादि और मुर्दा जला कर स्थान भ्रष्ट करने का बहुत दोष है। इससे जो महाशय अपने पूर्वजों की उत्तम गति चाहें वे शास्त्रानुकूल व्यवहार कर परम्परा के स्थानों में शवदाह कर अनन्त पुण्य भागी हों वेद शास्त्र पुराणादिकों में त्रिवेणी तटपर शवदाह की विधि कहीं नहीं है, शरीर त्याग का महत्व है।

भूमिका

विदित हो कि ये तीर्थराज प्रयाग सब तीर्थों के राजा और प्राचीन तीर्थ हैं जिनका माहात्म्य सहस्रमुख फणीन्द्र श्री शेषजी श्रीगंगातट वासुकी नाग स्थान पर सनकादि ऋषियों के प्रति कहा है वह माहात्म्य पद्मपुराणांतर्गत १०० अध्याय में है सो तीर्थराज को स्मरण करके लोकोपकारार्थ संक्षेप में स्नान पौराणिक माहात्म्य और श्रीत्रिवेणी जी का स्तोत्र निकाल कर लिखता हूं। प्रयागराज में अंतर्वेदी मध्यवेदी वहिर्वेदी नाम करके ३ वेदी २० कोश के मण्डल में हैं। यहां यज्ञ करने का बड़ा माहात्म्य है और कुण्डादिकों का न्यूनाधिक दोष नहीं होता। यहां मोक्षप्रद त्रिवेणी गंगा यमुना सरस्वती का संगम है। जिसको योगी लोग अत्यन्त परिश्रम से गुरूपदिष्ट द्वारा प्राण अपान को एक कर सुषुम्णा नाड़ी के आश्रित हो मेरु-दण्ड द्वारा आधारादि चक्रों को भेदन करते हुए आज्ञाचक्र अर्थात् भ्रूमध्य में जहां इड़ारूपी गंगा पिंगला रूपी यमुना और सुषुम्णा रूपी सरस्वती का संगम है वहां प्राप्त हो इस संगम में स्नान करते हैं जैसा योग शास्त्र में कहा है—

गंगा यमुनयोर्मध्ये वहत्येषा सरस्वती।
तासांतु संगमे स्नात्वा धन्यो याति पराङ्गतिम्॥

अर्थात् गंगा यमुना के मध्य में सरस्वती का प्रवाह है, इस संगम में जो स्नान करता है सो परमगति मोक्ष को प्राप्त होता है।

सितासिते संगमेयो मनसा स्नानमाचरेत् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो यातिब्रह्मसनातनम् ॥

भावार्थ—इस इड़ा पिंगला के संगम में मानसिक स्नान करने से साधक सब पाप से मुक्त हो सनातन ब्रह्म में लय हो जाते हैं।

अभिप्राय यह कि जिस स्थल में योगी लोग अत्यन्त कष्ट से कालांतर पा के मुक्त हो जाते हैं वो श्रीतीर्थराज में वेणी का संगम प्रत्यक्ष है।

सितासिते सरिते यत्र संगते तत्राप्लुतासो दिवमुत्पतंति ।
येवैतन्वाविसृजंति धीरास्तेजनासोऽमृतत्वं भजंते ॥
श्रुति।

श्वेत श्याम धारा की दो नदियां जहां पर संगम भई हैं वहां स्नान करनेवाले स्वर्ग को जाते हैं जो यहां शरीर त्यागते हैं वो मोक्ष पाते हैं इससे उचित है कि ऐसे अलभ्य लाभ को प्राप्त होकर स्नान अवश्य श्रद्धा भक्ति से सविधि कर त्रिवेणी स्तोत्र पाठ करें। क्योंकि "अस्मिन्योनगतिं प्राप्तो गतिस्तस्य न कुत्रचित्" जिनकी गति इस तीर्थ में न भई उनकी गति कहीं नहीं हो सकती छापेखाने के गलती से कहीं अशुद्ध समझा जाय उसको सज्जन सुधार लेयँ।

प्रकाशक

रामावतार बकसीबाजार प्रयाग

॥ सूत उवाच ॥

एवं शेषवचःश्रुत्वा प्रहृष्टा ब्रह्मनंदनाः ॥
त्रिवेणी वर्णनं भूयः श्रोतुकामास्तमब्रुवन् ॥ १ ॥

॥ सनक उवाच ॥

मनःप्रशांतंनःश्रांतं श्रुत्वा माहात्म्यमुत्तमं ॥
तथापि जायते तृष्णा पुनर्दार्ढ्याय तद्वद ॥ २ ॥
एकवारं द्विवारं वा त्रिवारं श्रवणेनवै ॥
इदं शेषं हृदिस्थं चेत् ज्ञाने यत्नोति निष्फलः ॥३॥

सूत बोले, इस प्रकार शेष की बातें सुनकर ब्रह्मपुत्र सनकादिक बहुत प्रसन्न हुए, और पुनः त्रिवेणी वर्णन सुनने की इच्छा से वे उनसे बोले ॥१॥ सनक बोले, उत्तम माहात्म्य सुनकर हम लोगों का थका मन प्रसन्न हो गया, पर पुनः सुनने की इच्छा होती है, इसलिए आप पुनः कहें जिससे प्रयाग का माहात्म्य हम लोगों के हृदय में दृढ़ हो जाय ॥२॥ एक बार दो बार या तीन बार सुनने से यदि यह चेत्र हृदयस्थ हो जाय तो ज्ञान के लिए प्रयत्न करना निष्फल है ॥३॥

अस्य क्षेत्रस्य का शक्तिः सर्वोत्कृष्टा निरूपिता ॥
त्रिवेणी नामविख्याता क्षेत्रबीजमयीत्वया ॥ ४ ॥
भूयो वर्णयतां स्वामिन् शेषाशेष शिखामणे ॥
तद्गुण श्रवणेऽस्माकं लालसा बहुजायते ॥ ५ ॥

॥ शेष उवाच ॥

मंत्राणां जीवनं बीजं जीवानां जीवनं यथा ॥
तथा त्रिवेणीतीर्थानां जीवनं वीर्यवर्धनं ॥ ६ ॥
ज्ञानसिद्धिकरीवेणी मोक्षसिद्धिकरीश्वरी ॥
सर्वसंपत्करीदेवी त्रिवेणी सेव्यतां सदा ॥ ७ ॥

इस क्षेत्र की कौन शक्ति सब से बड़ी कही गयी है। क्षेत्रों का बीज रूप जो त्रिवेणी नाम से प्रसिद्ध हुई है ॥४॥ स्वामिन् हे शेष, हे सर्प शिखामणे, आप पुनः उसका वर्णन करें उसके गुण सुनने के लिए हम लोग बहुत उत्कण्ठित हैं ॥५॥ जिस प्रकार मन्त्रों का जीवन बीज है और मनुष्यों का जीवन जीवन है उसी प्रकार त्रिवेणी तीर्थों का बीज है और उनकी शक्ति बढ़ाने वाली है ॥६॥ वेणी ज्ञान देने वाली मोक्ष देने वाली और ईश्वरी सब सम्पत्तियों को देने वाली है यह देवी है इसकी हमेशा सेवा करो ॥७॥

वेणीकृन्तति पापानि पुण्यंत्वहनिवर्द्धते ॥
विशेषतो भक्तिमतां कार्य्याकार्यं विजानताम् ॥८॥
न वेणीसदृशी काशी न वेणीसदृशी गया ॥
न वेणीसदृशी शक्ति स्तीर्थेन्यत्रास्ति कुत्रचित् ६
कामधेनुरियं वेणी कामकल्पलतास्मृता ॥
वेणी मोक्षस्यविख्याता सप्तपूर्भ्योऽष्टमीपुरी ॥१०॥
त्रिविधागतिजातघ्नी पापत्रैविध्यनाशिनी ॥
त्रैलोक्याशेषदोषघ्नी न समान्यास्ति कुत्राचित् ११

वेणी पापों को दूर करती हैं पुण्य बढ़ाती हैं, जो भक्तिमान् हैं कार्याकार्य जानते हैं उनका पुण्य त्रिवेणी विशेष कर बढ़ाती हैं ॥८॥ न वेणी के समान काशी है और न गया है। वेणी के समान शक्ति किसी तीर्थ में नहीं है ॥६॥ यह वेणी कामधेनु हैं, काम कल्पलता हैं। वेणी मोक्ष देने के लिए सप्त-पुरियों में आठवीं पुरी प्रसिद्ध हैं ॥१०॥ तीन प्रकार की गतियों को यह नाश करनेवाली हैं, तीन प्रकार के पापों को नाश करने वाली हैं और त्रिलोक के समस्त दोषों को दूर करने वाली हैं, इनके समान दूसरी कोई नहीं है ॥११॥

सरस्वती रजोरूपा तमोरूपा कलिंदजा ॥
सत्वरूपा च गङ्गाच नयंति ब्रह्मनिर्गुणम् ॥१२॥
गङ्गा विष्णुपदी ज्ञेया यतो विष्णुपदोद्भवा ॥
रविजायमुनापुण्या तयोर्योगोह्यनुत्तमः ॥ १३ ॥
एवं त्रिवेणीसामीप्यात् परानंद मुपेयुषः ॥
मनोमेनैतिपाताले प्यरिक्ताखिलसंपदि ॥ १४ ॥
शृण्वंतु नयनानंद कारिणीं भवतारिणीम् ॥
त्रिवेणीं निर्गुणांस्तौमि सनकाद्या महर्षयः ॥१५॥

सरस्वती का रूप राजसिक है, यमुना का रूप तामसिक है और गंगा का रूप सात्विक है यह लोगों को निर्गुण ब्रह्मपद ले जाती हैं ॥१२॥ गंगा विष्णुपदी हैं क्योंकि वह विष्णु के चरणों से उत्पन्न है, यमुना सूर्य की पुत्री है उनका संगम सर्वोत्तम है ॥१३॥ त्रिवेणी के समीप से मुझे बहुत आनन्द होता है, यद्यपि पाताल में सब प्रकार की सम्पत्ति है तथापि मेरा मन त्रिवेणी छोड़कर वहाँ जाने का नहीं होता ॥१४॥ हे सनकादिक महर्षियो, नेत्रों को आनन्द देनेवाली संसार से उद्धार करनेवाली निर्गुण त्रिवेणी की मैं स्तुति करता हूं आप लोग सुनें ॥१५॥

॥ शेष उवाच ॥

देहेंद्रियप्राणमनोमनीषा चित्ताहमज्ञान विभिन्न-रूपा ॥ तत्साक्षिणीया स्फुरतिस्वभासा साक्षात्त्रिवेणी ममसिद्धिदाऽस्तु ॥१६॥ जाग्रत्पदं स्वप्न-पदं सुषुप्तं विद्योतयंती विकृतिं तदीयाम् ॥ या निर्विकारोपनिषत्प्रसिद्धा साक्षात्त्रिवेणीमम-सिद्धिदाऽस्तु ॥ १७ ॥ सुप्तेसमासात्सकलप्रकार ज्ञानक्षयेचेंद्रियजार्थबोधे ॥ साप्रत्यभिज्ञायतएव-सर्वैः साक्षात्त्रिवेणीममसिद्धिदाऽस्तु ॥ १८ ॥

शेष बोले, देह इन्द्रिय प्राण संकल्परूपा मन निश्चय रूपा बुद्धि चित्त अहङ्कार अज्ञान से भिन्नरूपा आदि जो अनेक रूप हैं उनकी साक्षिभूता अपने प्रकाश से प्रकाशित होने वाली त्रिवेणी मेरे लिए सिद्धि-दात्री हो॥१६॥ जाग्रत स्वप्न और सुषुप्ति को जो प्रकाशित करती हैं जो इनके विकारों को बतलाती हैं और जो उपनिषद में निर्विकार प्रसिद्ध हैं वह त्रिवेणी मेरी सिद्धिदात्री हों॥१७॥ सुप्तदशा में जब सब प्रकार के ज्ञान नष्ट हो जाते हैं इन्द्रियों की अर्थ ग्रहण करने की शक्ति जाती रहती है उस समय भी जो वर्तमान रहती है जो जानी जाती है वह त्रिवेणी मेरे लिए सिद्धिदात्री हो॥१८॥

यस्यां समस्तं जगदेतितज्ज्ञं मेकापरस्मै भवति स्वयंनः ॥ यात्यंत सत्प्रीतिपदत्वभागात् साक्षात्त्रिवेणीममसिद्धिदाऽस्तु ॥१६॥ अव्यक्त विज्ञान विराट्विभेदात् प्रदीपयंती निजदीप्तिदीपात् ॥ आदित्यवद्विश्वविभिन्नरूपा साक्षात्त्रिवेणीमम-सिद्धिदाऽस्तु ॥२०॥ ब्रह्माणमादौ जगतोस्यमध्ये विष्णुं तथांतेकिलचंद्रचूडम् ॥ याभासयंतीस्वविभासमाना साक्षात्त्रिवेणीममसिद्धिदाऽस्तु ॥२१॥

समस्त जगत् जिसमें प्रतिदिन लीन होता है, जो स्वयं हम लोगों के लिए एक हो जाती हैं जो उत्तम अत्यंत प्रीति की पात्र हैं वह त्रिवेणी मेरे लिए सिद्धिदात्री हों ॥१६॥ जो ब्रह्मपुरुष विज्ञान और विराट् के भेदों को अपनी दीप्ति रूपी दीपक से प्रकाशित करती हैं और जो सूर्य के समान संसार में अनेक रूप से वर्तमान हैं वह त्रिवेणी मेरे लिए सिद्धिदात्री हों ॥२०॥ इस जगत् को आदि में ब्रह्मा को मध्य में विष्णु को और अन्त में शिव को प्रकाश स्वरूपा अपने प्रकाश से जो प्रकाशित करती है वह त्रिवेणी मेरे लिए सिद्धिदात्री हों ॥२१॥

अकारवाच्या चतुरास्य विश्वा वैश्वानरात्म्यैव मकारवाच्या ॥ यातूच्यते तैजससूत्रसंज्ञा साक्षात्रिवेणीममसिद्धिदाऽस्तु ॥ २२ ॥ अव्याकृतप्राज्ञगिरीश्वरांगी यामुक्तिचाज्ञान समस्तशून्या ॥ योंकारलक्ष्म्यातु तुरीयतत्वा साक्षात्त्रिवेणीममसिद्धिदाऽस्तु ॥ २३ ॥ अनेनस्तवनेनैनां त्रिसंध्यं यः स्मरेन्नरः ॥ तस्यवेणी सुप्रसन्ना भविष्यति न संशयः ॥ २४ ॥

विष्णु शिव और अग्निस्वरूपिणी हैं इस लिए यह अकार वाच्य है, यह तैजस सूत्र कही जाती है, यह त्रिवेणी मेरे लिए सिद्धिदात्री हों ॥ २२ ॥ महादेव के शरीर से जो पृथक नहीं हुई है जो मुक्ति रूपिणी है सब प्रकार के अज्ञानों से शून्य हैं जो ओंकार की लक्ष्य तुरीयतत्व हैं वह त्रिवेणी मेरे लिए सिद्धिदात्री हों ॥ २३ ॥ इस स्तुति के द्वारा जो त्रिवेणी का तीनों सन्ध्या स्मरण करता है, उस पर वेणी प्रसन्न हो जाती हैं इसमें सन्देह नहीं ॥२४॥

मंत्रसारमिदंनाम व्यासोक्तं स्तोत्रमुत्तमं ॥ तस्य-
जाप्येनसादेवी प्रत्यक्षं मम सर्वदा ॥२५॥ यत्र
यत्र च गच्छामि तत्र तत्रास्ति संमुखी ॥ तंतं
कामं ददातीयं यंयं कामं च कामये ॥२६॥ किं
तीर्थैः सेवितैरन्यै र्वह्वाया सफलप्रदैः ॥ त्रिवेणी
सेव्यतां सर्वैं र्धर्मकामार्थ मोक्षदा ॥ २७ ॥
सगुणांतामथोस्तोष्ये श्रूयतां ब्रह्मनंदनाः ॥ यस्य
श्रवणमात्रेण सर्वस्वांतं प्रसीदति ॥ २८ ॥

व्यासोक्त यह स्तोत्र मन्त्रसार है उसके जप करने
से वह देवी सदा मेरे प्रत्यक्ष रहती हैं ॥२५॥ जहां
जहां मैं जाता हूं वहां वहां त्रिवेणी मेरे सामने
रहती हैं, जो जो मनोरथ मैं करता हूं वह वह यह
पूरण करती हैं ॥२६॥ बड़े परिश्रम से फल देनेवाले
अन्य तीर्थों की सेवा से क्या फल, सब लोग त्रिवेणी
की सेवा करो, क्योंकि यह धर्म अर्थ काम और
मोक्ष देनेवाली है ॥२७॥ अब मैं सगुण त्रिवेणी की
स्तुति करता हूं, हे ब्रह्मपुत्रो आप लोग सुनें, जिसके
सुनने से सब का मन प्रसन्न हो जाता है ॥२८॥

॥ सूत उवाच ॥

इति शेषोक्तवचनै हर्षिताः सनकादयः ॥ वेणी-
स्तुतिंस्तोतुकामाः प्रणेमुस्तं पुनःपुनः ॥ २६ ॥
यामुवाचस्तुतिंवेण्याः शेषस्तेभ्यो विचक्षणः ॥
तां प्रवक्ष्यामि शृणुत ज्ञानदृष्टि विचक्षणाः ॥३०॥

॥ शेष उवाच ॥

पुराकल्पापाये भगवतिशयाने वटपुटे ॥ यदा
सर्वान् लोकान् जठरपिठरे संहृतवति ॥ तदा
क्षेत्रंवेणी जयति जगदीशस्य वसतिः ॥ प्रयागे
ब्रह्माण्डे नहि समगुणाऽन्या विजयते ॥ ३१ ॥

सूत बोले, शेष के इस वचन से सनकादिक प्रसन्न
हुए, वेणी की स्तुति करने की इच्छा रखने वाले
शेष को वे बारबार प्रणाम करने लगे ॥२६॥ सनका-
दिकों से श्रेष्ठ शेष ने वेणी की जो स्तुति की वह मैं
कहता हूं हे ज्ञानियों, आप लोग सुनें ॥३०॥ शेष
बोले, पहले प्रलयकाल में जब भगवान् वटपत्र पर
सो गये थे और उन्होंने समस्त लोक को अपने पेट
में धारण किया था। उस समय वही त्रिवेणी क्षेत्र
जगदीश का वास स्थान था। ब्रह्माण्ड में प्रयाग के
समान दूसरा तीर्थ नहीं है ॥३१॥

त्रिकूटादुद्भूता त्रिगुणरचिता त्र्यक्षरमयी ॥ त्रिधा-मात्रा भूत्वा त्रिविधपथगा त्र्यंवकवती ॥ त्रिवेणी निश्रेणी हरिचरणसान्निध्य जननी ॥ पुनंती त्रैलो-क्यं त्रिभुवनविभूषा विजयते ॥३२॥ वेणीं ध्याये-त्रिवर्णां सितहरितलसद्रक्तवस्त्रां त्रिनेत्रां ॥ दोर्भिः शङ्खाब्जचक्रक्रमधृतसुगदां श्वेतपद्मा-सनस्थां ॥ वालां भालेंदु मालां कृतधृतमुकुटां ब्रह्मरुद्रेंद्र वंद्यां ॥

त्रिकूट से उत्पन्न हुई, त्रिगुण से बनी त्रिअक्षर स्वरूपा त्रिवेणी त्रिमात्रा होकर तीन भागों से बही तीन आखों वाली त्रिवेणी विष्णु चरण के समीप पहुंचाने वाली सीढ़ी है, तीनों लोकों को पवित्र करती है और त्रिलोक का भूषण है, यह विजयिनी हो ॥३२॥ मैं वेणी का ध्यान करता हूं जो श्वेत हरित और लाल हैं क्योंकि रक्तवस्त्र धारण किये हुये है इस प्रकार वह त्रिवर्ण है तीन नेत्रों वाली हैं, बाहुओं में शंख कमल चक्र और गदा धारण किये हैं श्वेत कमल पर बैठी हैं मस्तक में चंद्रमा की माला है मुकुट धारण किये हुई है ब्रह्मा शिव और इन्द्र उनकी स्तुति करते हैं,

स्नाने कालत्रये यः स्मरति सहिपुमान् भुक्ति-
मुक्तीलभेत ॥ ३३ ॥ ब्रह्मरुद्रेंद्रनमिते सर्वसिद्धि
सुसेविते ॥ त्रिकूट मिलितेमात र्नमोवेएयै नमो-
नमः ॥३४॥ गंगायमुनयोर्मध्ये गोचरे संधिबंधुरे ॥
अक्षय्यमोक्षलतिके तुभ्यं वेएयै नमोनमः ॥३५॥
प्रयागतीर्थराजस्य करपल्लव मालिके ॥ अक्षय्या-
क्षर जाप्यस्य विधान फलदेनमः ॥३६॥ धर्मार्थ
काम मोक्षाणां भूमिके भुविविश्रुते ॥ वेणी त्वं
पाहिमां साक्षा दृष्टे स्पृष्टेऽवगाहिते ॥ ३७ ॥

स्नान के समय और तीनों कालों में जो स्मरण
करता है वह मनुष्य भोग और मोक्ष पाता है ॥३३॥
ब्रह्मा रुद्र और इन्द्र से सेवित सिद्धों से सेवित
त्रिकूट संगत माता वेणी को नमस्कार ॥३४॥ गंगा
और यमुना के मध्य में प्रत्यक्ष होने वाली, अक्षय
मोक्ष की लता रूपिणी वेणी को नमस्कार ॥३५॥
तीर्थराज प्रयाग के हाथों की माला अक्षय अक्षर
के जप के फल देनेवाली त्रिवेणी को नमस्कार है
॥३६॥ तुम पृथिवी में धर्म अर्थ काम और मोक्ष की
भूमि प्रसिद्ध हो हे वेणि, दर्शन से स्पर्शन से और
स्नान से तुम मेरी रक्षा करो ॥३७॥

सर्वांगमेषु विख्याते सर्वतीर्थवरप्रदे ॥ जीवानां कल्पलतिके वेणीमातर्नमोनमः ॥ ३८ ॥ त्वं मोक्षलक्ष्मीस्त्वमतिप्रभासि त्वं ब्रह्मनाडी चरनाडिगाऽसि ॥ त्वं ब्रह्ममायासि विचित्रगासि प्रत्यक्षरूपासि नमोनमस्ते ॥३९॥ सूत उवाच ॥ इति शेषेण मुनयः सनकादिभ्य ईरितं ॥ स्तोत्रं दिवाऽथवानक्तं पठनात्सर्वकामदम् ॥ ४० ॥ पठितव्यं पठितव्यं पठितव्यं पुनःपुनः ॥ सर्वसिद्धिकरंनृणां नाख्येयं यस्यकस्यचित् ॥ ४१ ॥

सब वेद और शास्त्रों में तुम प्रसिद्ध हो सब तीर्थों को वर देने वाली हो जीवों के लिए कल्पलता हो, हे वेणी माता आपको नमस्कार है ॥३८॥ तुम मोक्ष लक्ष्मी हो, अत्यन्त प्रकाशरूपा हो ब्रह्मनाड़ी हो, उत्तम नाड़ियों में रहने वाली हो तुम ब्रह्ममाया तुम विचित्र गति वाली हो तुम प्रत्यक्ष हो, तुमको नमस्कार है ॥३९॥ सूत बोले, मुनियो यही शेष ने सनकादिक से कहा था दिन में या रात में पाठ करने से यह स्तोत्र सब कामों को देनेवाला है ॥४०॥ इस स्तोत्र का बार बार पाठ करना चाहिये इसके पाठ से मनुष्य को सब सिद्धियां प्राप्त होती हैं जिस किसी को यह स्तोत्र नहीं कहना चाहिये ॥४१॥

तदिदं कथितं स्तोत्रं व्यासेनानुग्रहेणमे ॥
पुनरप्याह यच्छेष स्तद्वदामि मुनीश्वराः ॥४२॥
॥ शेष उवाच ॥
अथ वक्ष्येपुनस्तोत्रं वेणयाः पापप्रणाशनं ॥
अतर्क्यं तर्करुचिरं सर्वतर्कसमन्वितम् ॥ ४३ ॥
प्रयागे वेणिकारूपं ह्येकरूपं कदापि न ॥ अत-
स्तथाहमुत्प्रेक्षे भासतेसौ यथायथा ॥४४॥ मुक्ता
नीलेंद्रगोपैरिवाकिमुरचिता भातिवेणीवमुक्तेः ॥
श्रेणी भूतातिरम्या करजसुरचिता माधवेन प्रयत्नात्

अनुग्रह करके व्यास ने यह स्तोत्र मुझसे कहा है, मुनिया, शेष ने फिर भी जो कहा वह भी मैं कहता हूं ॥४२॥ शेष बोले, पुनः मैं वेणी स्तोत्र कहता हूं वेणी स्तोत्र पापों को नष्ट करता है बहु विचार से भी जो समझ में न आवे तर्क से सुन्दर भरा और सब तर्कों से युक्त यह है ॥४३॥ प्रयाग में त्रिवेणी का रूप सदा समान नहीं रहता इस कारण वह जैसी भासित होती है वैसी उत्प्रेक्षा मैं करता हूं ॥४४॥ वह मुक्ति की वेणी के समान मालुम होती है और मोती नीलम तथा इन्द्रगोप से बनायी गई बढ़िआ सीढ़ी प्रयत्नपूर्वक माधव ने अपने नखों को करीने से सजाया है जो सुन्दर मालुम पड़ती है।

दृष्टीवाकापिजीवान्विषयविषहता जीवयंती विधात्रा ॥ किंवा चक्रे स्वकीया तनुरसितसिता पावनीनः पुनातु ॥ ४५ ॥ क्वचित्सरलवेणिका क्वचिदुपासनामालिका ॥ क्वचिन्नियमकालिका क्वचिदुदार भावात्मिका ॥ क्वचित्खचितवेणिका क्वचिदुपासितादेविका ॥ क्वचित्सलिलमातृका ममतुभासतेवेणिका ॥४६॥

अथवा ब्रह्मा की यह आंख है जो विषय विष से आहत जीवों की रक्षा करती है अथवा उन्होंने अपने शरीर को ही श्वेत और नीला बना लिया है, ऐसी परम पावनी श्वेत नील रूपा हमारी रक्षा करें ॥४५॥ कहीं सीधी वेणी (रेखा) है कहीं पूजा की मालाएँ हैं अथवा कहीं पूजा की माला के समान हो गई हैं कहीं नियमों की माला हैं, कहीं उदार भाव स्वरूपा है, कहीं बनाई हुई वेणी (चोटी) के समान हैं, कहीं देवियों की उपासना स्थली हैं, कहीं जल की माता स्वरूपा हैं, पर मुझे तो यह वेणी ही मालुम होती है ॥४६॥

महाकलुषकर्तरी विषयवासनातुर्फरी ॥
समस्तसुखपर्फरी स्वशिरिवावधेः सर्सरी ॥
नितांतसुखशर्करी सुखलतालसन्मञ्जरी ॥
विनोदयति माधुरी ग्रथितवेणिकाचातुरी ॥४७॥
क्वचेंद्रधनुषोपमा क्वचिदिभेंद्ररागोपमा ॥
पुनातुनिगमोपमा सितसितेंद्र गोपोपमा ॥
क्वचिद्दरवरोपमा क्वचरथांग लब्धोपमा ॥
क्वापि सुगदोपमा क्वचनकंजलब्धोपमा ॥४८॥

बड़े पापों को काटने वाली कैंची है विषय वासना को जलाने वाली अग्नि हैं समस्त सुखों को देने वाली संसार के लिए अंकुश स्वरूप हैं बहुत सुख की दात्री बालू की ढेरें हैं सुख की खान हैं मंजरी से शोभित होने वाली सुख की लता वेणी प्रसन्न करे, माधुरी रूपा जो चतुरता पूर्वक गूंथी गई है ॥४७॥ कहीं यह इन्द्र धनुष के समान है कहीं गजराज के माथे में शोभित रंग के समान है श्वेत नील इन्द्र-गोप के समान यह निगम तुल्य त्रिवेणी पवित्र करे। कहीं शंख की तरह कहीं चक्र की तरह कहीं सुंदर गदा के समान है, कहीं कमल के समान हैं ॥४८॥

क्वचिन्नवनिधिस्थली क्वचिदहींद्र वक्षस्थली ॥
क्वचिद्गूर नखस्थली क्वचिदुपास्य मन्त्रस्थली ॥
क्वचित्सुख भुवस्थली क्वचिदगाध योगस्थली ॥
ममास्तुहशि सर्वदा निगमवेणिका सुस्थली ॥४६॥
महेश्वरलसज्जटा किमुभुजंग लोलाफटा ॥
नृसिंहतनुरुद्भटा सकलमुक्तिदायप्रस्फुटा ॥
अनेकजनिदुर्घटा विहित साधने लंपटा ॥
कटाक्षयतुचित्पटा विहरणोस्तुमे षट्तटा ॥५०॥

कहीं गड्ढे के समान है और कहीं चन्द्र के समान कहीं नवनिधि का स्थान है, कहीं सर्पराज के वक्ष-स्थल के समान है कहीं सुखों की उत्पत्ति स्थान के समान है कहीं उपास्य मन्त्रों की स्थान है कहीं अगाध योग की स्थान हैं निगम की वेणी मेरे लिए सदा सुन्दर स्थान हो ॥४६॥ शोभने वाली शिव की जटा है या सर्प की चञ्चल फणा है अथवा नृसिंह की शरीर है या स्फुट सबको मुक्ति देनेवाली है, अनेक जन्मों में मुश्किल से प्राप्त होने वाली शास्त्र कथित साधनों को करने वाली यह मुझे देख, और इसके ६ तटों पर मैं विहरण करूँ ॥५०॥

अनेकमतिदूषिका विशद्भेदसंपादिका॥प्रयाग-
ग्रहदीर्घिका मधुरिपो किमांदोलिका ॥ सुरद्रुम-
सुवेदिका भगवतःपदोपादुका॥त्रिवर्णांकृतवर्णांका
ममतुभासते वेणिका ॥ ५१ ॥ किमूर्ध्वरेखाभग-
वत्पदस्था ध्वजाब्जवज्रांकुशभूमिसंस्था ॥
मंदाकिनीवागगनांतरस्था विभाति वेणी मम-
मानसस्था ॥ ५२ ॥

अनेकों बुद्धि को दूषित करनेवाली निर्मल भेद पर-
मेश्वर को संपादन करने वाली यह प्रयागराज के
वास का बड़ा घर है क्या विष्णु का हिंडोला है;
कल्पद्रुम की वेदी है या भगवान् के चरणों की
पादुका हैं तीन रंगों से जिनका रूप बना है वह
मुझे तो वेणी मालुम होती हैं ॥५१॥ क्या भगवान्
के चरणों की यह ऊर्ध्व रेखा हैं, या भूमि की ध्वजा
कमल हीरा या अंकुश हैं या आकाश में रहनेवाली
गंगा हैं मेरे मन में वास करने वाली वेणी शोभती
हैं ॥५२॥

ब्रह्मेन्द्र रुद्रादि नमस्कृतायै विचित्र वर्णाकृति भूषणायै ॥ परात्परायै परदेवतायै नमस्त्रिवेण्यै सकलार्थदायै ॥ ५३ ॥ विष्णुप्रियायै परदेवतायै नमोस्तु वेण्यै प्रणवाभिधायै ॥ चतुर्भुजायै चतुरायुधायै विचित्रमालाभरणांबरायै ॥ ५४ ॥ इति त्रिवेणी स्तवनं पठन्ति स्नात्वा त्रिकालं जलमध्य संस्थाः॥ तेषां करस्था भवतीह मुक्ति र्भुक्तिश्च वेणीस्तवन प्रसादात् ॥ ५५ ॥

ब्रह्मा इन्द्र रुद्र आदि ने जिसको नमस्कार किया है जिसके वर्ण आकार और भूषण विचित्र हैं जो सर्व श्रेष्ठ देवता हैं, सकल अर्थ देनेवाली त्रिवेणी को नमस्कार है ॥५३॥ श्रेष्ठ देवता विष्णु प्रिया को प्रणव नाम वाली वेणी को नमस्कार, चार भुजा वाली चार आयुध धारण करनेवाली विचित्र माला आभरण और वस्त्र धारण करने वाली त्रिवेणी को नमस्कार ॥५४॥ स्नान करके तीनों काल जल में रहकर जो इस त्रिवेणी स्तोत्र का पाठ करते हैं वेणीस्तव के प्रसाद से भोग और मोक्ष उनके आधीन हो जाते हैं ॥५५॥

इति वेणीस्तवं तेभ्यः श्रावयित्वा पतंजलिः ॥
पुनः प्रोवाच माहात्म्यं तद्वक्ष्ये शौनकादयः ॥५६॥
इति श्रीपद्मपुराणे पातालखण्डे प्रयागमाहात्म्ये
पंचत्रिंशोध्यायः ॥ शेष उवाच ॥
यत्रैवं त्रिगुणा वेणी राजते विश्वतारिणी ॥
श्रीमाधवोक्षय्यवट स्तस्य को वर्णने क्षमः ॥१॥
तथापि भवतां भक्त्या प्रेरितोहं मुनीश्वराः ॥
तमहं वर्णये भूयो यथाशक्ति यथामतिः ॥ २ ॥
त्रैलोक्ये दुर्लभं स्नानं वपनंतु ततोधिकं ॥
तस्माच्च मुंडनं कार्यं सततं श्रुतिचोदितं ॥ ३ ॥
स्नानेन मुंडने नात्र सर्वपाप क्षयोयतः ॥
सप्तधातुमये देहे यानि पापानि संतिवै ॥ ४ ॥
केशेषु तानि सर्वाणि यत्र नश्यंति मुण्डनात् ॥
किं गया पिंडदानेन काश्यां वा मरणेन किं ॥५॥

यह वेणी स्तोत्र उन लोगों को सुनाकर पतंजलि पुनः बोले। हे शौनक आदि मुनियो यह माहात्म्य मैं कहता हूं ॥५६॥ पैंतीसवां अध्याय समाप्त ॥

किं कुरुक्षेत्रदानेन प्रयागे वपनं यदि ॥
बालोवाथ युवा वापि वृद्धो वा स्त्रीसभर्तृका ॥६॥
गर्भिणी पतिहीना वा प्रयागे वपनाच्छुचिः ॥
देवो वा दानवोवाथ मूर्खोवा वेदनिंदकः ॥७॥
प्रयागे वपनादेव सद्यः पापैः प्रमुच्यते ॥
केशमूलमुपाश्रित्य संति पापानि देहिनां ॥ ८ ॥
विलयंयांति सर्वाणि तीर्थराजेतु मुंडनात् ॥
अन्यतीर्थेषु पापानि वपनानंतरं पुनः ॥ ९ ॥
प्ररोहंति नरोहंति प्रयागे तीर्थनायके ॥
अकालेप्यथवाकाले रात्रावहनि संध्ययोः ॥१०॥
पुरश्चर्यारतोवापि प्रयागे क्षौरमाचरेत् ॥
अजातचौलोवालोपि ब्रह्मचारी कुमारिका ॥११॥
जीवत्पितापि कुर्वीत वपनं तीर्थनायके ॥
तीर्थराजं समासाद्य मुंडनं यो न कारयेत् ॥१२॥
स कोटिकुलसंयुक्तो रौरवं नरकं व्रजेत् ॥
सधवाप्यत्र कुर्वीत पत्यासह समागता ॥ १३ ॥

मुंडनं मंडनं वेण्या पतिमंडनकाम्यया ॥
यस्यावेणीभवेद्देवी त्रिवेणीतटलंघिनी ॥ १४ ॥
अथोच्यते तीर्थराजः प्रयागः सर्वतोऽधिकः ॥
तस्य शृण्वन्तु माहात्म्यं मुनयः सनकादयः ॥१५॥
तिस्रःकोट्योर्धकोटी दिवि भुवि सुतले संन्ति तीर्थानि तेषां ॥ राजा मुख्य प्रयागः स जयति जगतां भुक्तिमुक्तिप्रदाता ॥ अक्षय्यं क्षेत्रमेतद्‌-वटविटपिनिभं चामरे श्वेतनीले ॥ गङ्गेवाग्वादिनी सा कलयति च ततः को वदान्योऽस्ति मान्यः ॥ १६ ॥

हे सनकादिक मुनियो, तीर्थराज प्रयाग सब से श्रेष्ठ हैं, उनका माहात्म्य आप लोग सुनें ॥१५॥ स्वर्ग मर्त्य और पाताल में साढ़े तीन कोटि तीर्थ हैं, उन सब के राजा प्रयाग हैं, ये संसार को भुक्ति और मुक्ति देनेवाले हैं यह क्षेत्र बटवृक्ष के समान अक्षय है। यह गङ्गा तथा यमुना को श्वेत नील चामर रूप से धारण करते हैं। इनसे बढ़ कर और कौन श्रेष्ठ है ॥१६॥

सुरमुनिदितिजेन्द्रैः सेव्यते योऽस्ततन्द्रैर्गुरुतर-दूरितानां का कथा मानवानाम् ॥ स भुवि सुकृतकर्तुं वाञ्छितावाप्तिहेतुर्जयति विजितयागस्तीर्थराजः प्रयागः ॥ १७ ॥ श्रुतिः प्रमाणं स्मृतयः प्रमाणं पुराणमप्यत्र परं प्रमाणम् ॥ यत्रास्ति गङ्गा यमुना सरस्वती स तीर्थराजो जयति प्रयागः ॥१८॥ न यत्र योगाचरणप्रतीक्षा न यत्र यज्ञेष्टिविशिष्टदीक्षा ॥

आलस्य छोड़ कर देवता मुनि और दैत्य इनकी सेवा करते हैं। अनेक पापपूरित मनुष्यों की तो बात ही दूसरी है, मर्त्यलोक में पुण्य करनेवालों के मनोरथों को पूर्ण करनेवाले यज्ञविजयी तीर्थराज प्रयाग सब से श्रेष्ठ हैं ॥१७॥ श्रुतियां प्रमाण हैं, स्मृतियां प्रमाण हैं और सब से अधिक पुराण प्रमाण हैं, जहां गङ्गा और यमुना सरस्वती प्रमाण हैं वह तीर्थराज प्रयाग सब से श्रेष्ठ हैं ॥१८॥ जहां योगसाधन तथा आचरण की पवित्रता की प्रतीक्षा नहीं यज्ञ इष्टि करना विशेष कर दीक्षा आदि लेने की आवश्यकता नहीं।

न तारकज्ञानगुरोरपेक्षा स तीर्थराजो जयति प्रयागः ॥ १६ ॥ चिरंनिवासं न समीक्षते यो ह्युदारचित्तःप्रददातिकामान्॥ यः कल्पितार्थांश्च ददातिपुंसां स तीर्थराजो जयति प्रयागः ॥२०॥ तीर्थावलीयस्यतु कण्ठभागे दानावली वल्गति पादमूले ॥ व्रतावलीदक्षिण वाहुमूले सतीर्थराजो जयति प्रयागः ॥२१॥ अज्ञाः सुविज्ञाः प्रभवोऽपि यज्ञाः सप्तस्वपिद्वाः सुकृताऽनभिज्ञा ॥ विज्ञापयन्तः सततंहिकाले सतीर्थराजो जयति प्रयाग

तारकमन्त्र ज्ञान तथा गुरु की भी यहां अपेक्षा नहीं रहती, ऐसे तीर्थराज प्रयाग सब से श्रेष्ठ हैं ॥१६॥ बहुत दिनों तक अपने यहां निवास करने की आवश्यकता जो नहीं समझता, जो उदारता पूर्वक मनुष्यों की कामनाएँ पूर्ण करते हैं जो इच्छित पदार्थों को देते हैं वह तीर्थराज प्रयाग सब से श्रेष्ठ हैं ॥२०॥ तीर्थ समूह जिनके कण्ठ में रहते हैं दान समूह जिनके चरणों पर लोटते हैं और व्रतसमूह जिसके दक्षिण वाहुमूल में वर्तमान हैं सो तीर्थराज प्रयाग सब से श्रेष्ठ हैं ॥२१॥

सितासिते यत्र तरङ्गचामरे नद्यौ विभाते मुनि
भानुकन्यके ॥ नीलातपत्रं वटएव साक्षात् स
तीर्थराजो जयतिप्रयागः ॥२३॥ पुर्यःसप्तप्रसिद्धाः
प्रतिवचनकरीस्तीर्थराजस्य नार्यो ॥ नैकट्येनाति
हृद्या प्रभवति च गुणैः काशते ब्रह्मयस्याम्
सेयं राज्ञी प्रधाना प्रियवचनकरी मुक्तिदाने न
युक्ता ॥ येन ब्रह्माण्डमध्ये सजयति सुतरां
तीर्थराज प्रयागः ॥ २४॥

जिसके श्वेत और नीली गङ्गा यमुना नदियां जिसके
चामर हैं, और अक्षयवट साक्षात् नीला छत्र
है वह तीर्थराज प्रयाग सब से श्रेष्ठ है॥२३॥ सात-
पुरियां जिस तीर्थराज की आज्ञा पालन करनेवाली
स्त्रियां हैं, वह हृदयहारिणी काशी जिसमें समीप
होने के कारण ब्रह्म प्रकाशित हैं वह तीर्थराज की
आज्ञा पालन करनेवाली प्रधान रानी है। तीर्थराज
की वह प्रधान रानी मुक्ति देनेवाली है, वह तीर्थ-
राज प्रयाग इस ब्रह्मा में सब से श्रेष्ठ है ॥२४॥

तीर्थराजं समायान्ति ह्यात्मसंशुद्धिहेतवे ॥
मकरस्थे रवौ माघे प्रयागं माधवाज्ञया ॥ २५॥
प्रयागवासिनां नृणां स्पर्शमात्रेण देहिनः ॥
स्वर्गस्थाअपिमुच्यन्ते काकथा भुविवासिनाम् २६
जगती त्रितयस्थानां पापकर्म निवारणे ॥
तत्सामर्थ्यवलेनैव तीर्थानामस्ति पुण्यता ॥२७॥
तमिमं सर्वतीर्थानां जनीध्वमधिपं परम् ॥
परोपकृतये यूयं यदर्थमिह चागताः ॥ २८ ॥
एवं प्रयागमाहात्म्यं केनवर्ण्यं मुनीश्वराः ॥
तथापिवच्मि वः किञ्चित्प्रतिवाक्यस्यदित्सया २९

माधव की आज्ञा से माघमास में जब सूर्य मकरस्थ होता है तब आत्मा शुद्धि के लिए लोग प्रयाग में आते हैं ॥२५॥ प्रयागवासी मनुष्यों के स्पर्श मात्र से स्वर्गस्थ देवता भी मुक्त हो जाते हैं मनुष्यों की कौन बात ॥२६॥ जगत्त्रय के रहनेवालों के पाप दूर करने की शक्ति तीर्थों को तीर्थराज से ही मिलती है ॥२७॥ आप लोग इसको सब तीर्थों का राजा समझें, परोपकार की इच्छा से जिसके लिये आप लोग यहां आये ॥२८॥

श्री तीर्थराज स्नान विधिः

तीर्थेंदृष्टिपथं याते साष्टांगं प्रणिपत्य च। लुठित्वा लोठिनीं भूमा वुत्थायाञ्जलि माचरेत् ॥१॥ फल पुष्पादि सामग्रीं गृहीत्वाथ तटंगतः ॥ पुनः प्रणम्य साष्टाङ्गं त्रिवेणीं प्रार्थयेत्ततः ॥२॥

प्रार्थना

विष्णुपादोद्भवेदेवि माधव प्रियदेवते ॥ दर्शनं तव पापं मे दहत्वग्निरिवेंधनम् ॥१॥ लोकत्रयेऽपि तीर्थानि यानि संतिच देवताः ॥ तत्स्वरूपात्वमेवासि पाहिनः पापसंकटात् ॥२॥ गंगेदेवि नमस्तुभ्यं शिव-चूड़ा विराजिते ॥ शरण त्राणसंपन्ने त्राहिमां शरणागतम् ॥१॥ इन्द्रनीलोपलाकारे इलकन्ये यश-स्विनि ॥ सर्वदेवस्तुतेमात र्यमुनेत्वां नमाम्यहम् ॥२॥ प्रजापति मुखोद्भूते प्रणतार्त्ति प्रभंजिनि ॥ प्रयाग-मिलितेदेवि सरस्वति नमोस्तुते ॥३॥ त्रिवर्णे त्र्यम्बके देवि त्रिविधाघ विनाशिनि ॥ त्रिमार्गे त्रिगुणे त्राहि त्रिवेणि शरणागतम् ॥४॥ संसारानल संतप्तं काम-रागादिवेष्टितं ॥ पतितं त्वत्पदाब्जेमां शीतलं कुरुवेणिके ॥५॥ जठरेऽखिलमाधाय त्वयिस्वपिति माधवः ॥ कृत्वामुखाम्बुजे पादौ नमोऽस्तुयमबटा-

यते ॥६॥ नीलजीमूतसंकाश पीतकौशेयभूषित ॥ प्रयागनिलयस्वामिन्वेणीमाधव ते नमः ॥७॥ शंख चक्र गदा पद्म विभूषित चतुर्भुज ॥ चतुर्वर्ग फला-धार वेणीमाधव ते नमः ॥८॥ त्वत्पाद प्रणंतं मां त्वं कमल श्रीमुषादृशा ॥ उद्धरस्व महोदार वेणी-माधव ते नमः ॥९॥

बध्वांजलिं शिरस्येवं माधवं प्रार्थ्य भक्तितः। प्रणवेनजलं स्पृष्ट्वा प्रार्थयेद्भैरवादिकान् ॥ तीक्ष्ण-दंष्ट्र महाकाय कल्पांत दहनोपम। भैरवाय नमस्तु-भ्यं स्नानानुज्ञां प्रयच्छमे ॥ त्वंराजा सर्वतीर्थानां त्वमेव जगतः पिता। याचितं देहिमेतीर्थं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥१॥ अपामधिपतिस्त्वंच तीर्थेषु वसतिस्तव॥ वरुणाय नमस्तुभ्यं स्नानानुज्ञांप्रयच्छमे ॥ १० ॥ अधिष्ठात्र्यश्च तीर्थानां तीर्थेषुविचरंतियाः। देवतास्ताः प्रयच्छंतु स्नानाज्ञां मम सर्वदा ॥ इति संप्रार्थ्य हस्तौपादौ प्रक्षाल्याचम्य। तीर्थादुदकमा-दाय त्वक्त्वाचापमितां (४ हाथ) भुवम् ॥ पाणि-पादास्यमुत्क्षाल्य गंडूषान्द्वादशक्षिपेत् । पुनस्तीरं समागत्य द्विराचम्य पवित्रधृक् ॥ गंधाक्षतफल-द्रव्यैर्जलेनार्घ्याणि निक्षिपेत् ॥१५॥ विधातृ कर-

कोद्भूते भागीरथ्यघनाशिनि । त्रैलोक्यवंदिते देवि गृहाणार्घ्यं नमोस्तुते ॥१॥ गभस्ति तनयेदेवि यमुनेत्वं महानदि । ऋषि सिद्ध सुरैर्जुष्टे गृहाणार्घ्यं नमोस्तुते ॥२॥ विरंचि कन्यकेदेवि ब्रह्मरंध्र कृतलये। सरस्वतिजगन्मातर्गृहाणार्घ्यं नमोस्तुते ॥३॥ एकार्णवे महाकल्पे सुषुप्सोर्माधव प्रभो: ॥ अक्षय्यवट राजत्वं गृहाणार्घ्यं नमोस्तुते ॥४॥ वेणीमाधव सर्वज्ञ भक्तेप्सितफलप्रद ॥ सफलांकुरुमे यात्रां गृहाणार्घ्यं नमोस्तुते ॥५॥ श्रीपद्मपुराणे पातालखंडे एकोनचत्वारिंशोध्याय: ॥

स्नान संकल्प:

ॐ तत्सदद्य विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः श्रीपुराण पुरुषोत्तमाय अद्य ब्रह्मणो द्वितीयपरार्द्धे श्रीश्वेतवाराह कल्पे वैवस्वतमन्वंतरे अष्टाविंशति मे युगे कलियुगे कलि प्रथमचरणे जम्बूद्वीपे भरतखंडे आर्यावर्त्तांतर्गत ब्रह्मावर्त्तैकदेशे श्रीविष्णु प्रजापति क्षेत्रे प्रयागेऽमुकसंवत्सरे मासे पक्षे (शेष उवाच) विद्यमानेऽद्य दिवसे तिथिवासरसंयुते। नक्षत्र योग करणे पुण्यकाल सुसंयुते ॥१॥ जन्मजन्मान्तरे तद्वदिहजन्मनिजन्मतः। आरभ्यैतत्क्षणंयावत् वाल्य

यौवनवार्धके ॥२॥ रहसि प्रकटं योषित्कामाकाम
कृतिंतथा। सकृदभ्यासतोवापि मनोवाक्काय कर्म-
भिः ॥३॥ ब्रह्महत्या सुरापानं गुरुतल्पगतिस्तथा।
रुक्मचौर्यं चतत्संगो महापातक पंचकम् ॥४॥
महापातकतुल्यानि पापान्युक्तानि यानि च। अति
पातक संज्ञानि तन्यूनमुपपातकम् ॥५॥ इन्धनार्थं-
द्रुमच्छेदस्तथैवेन्धन विक्रयः। अकाले वृक्ष विच्छे-
दस्तथैवौषधजीवनन् ॥६॥ स्त्रीहिंसा यंत्रनिर्माणं
भ्रूणहत्यादिकंतथा। संकलीकरणं चैव मलिनीकरणं
[त]था ॥७॥ अपात्रीकरणं चैव जातिभ्रंशकरन्तथा।
[प्र]कीर्णकंच गोहिंसा पशुहिंसा तथैव च ॥८॥
ब्राह्मणी विधवा शूद्री दासी वेश्यारतं तथा।
अभक्ष्यवस्तुनो भक्षोह्यभोज्यस्य च भोजनम् ॥९॥
अपेय वस्तुनः पानमलेह्यस्यचलेहनम् । अले-
प्यलेपनं तद्वद् चोष्यस्य च चोषणं ॥१०॥ अस्पृ-
श्यास्पर्शनं चैव तथैवावाच्य वाचनम्। परमर्मो-
द्घाटनंच द्विजवृत्ति विलोपनं ॥११॥ पंक्तिभेदस्तथा
विष्णोः शिवस्यापि च भेदधीः। द्विजाऽनाथाऽबला
द्रव्यस्यापहारस्तथैवच ॥१२॥ निषिद्धान्नं पतितान्नं
गणिकान्नं तथैव च। कृच्छ्रान्नं च गणान्नं च सूति-

शूद्रान्नमेव च ॥१३॥ साधु भार्या विसर्गश्च माता पितृतिरस्कृतिः । स्तुति स्वस्यान्न्यनिन्दा च द्विजस्य च गुरोस्तथा ॥१४॥ यतिसाध्वा बलामातृ पितृ निन्दा तथैव च । ब्रह्म द्वेषश्च ते नैव त्रिरात्राभाषण-न्तथा ॥१५॥ कृतघ्नता च पैशून्य पाखंडा चरणन्तथा । उदक्या सूतकीवेश्या रजकी चर्मकारिका ॥१६॥ एताभिः सहसंवासः स्पर्शनं भाषणं मिथः । तच्छ्व मारुतस्पर्शः छायासंस्पर्श एवच्च ॥१७॥ शवस्य चिति-काष्ठस्य पूयस्यास्थनोन्त्यजस्य च । स्पर्शनं सहवा-सश्च महापातकि चोरयोः ॥१८॥ कुग्राम वसति-स्वस्थे कुशौचंचकुभोजनम् । दुर्भाण्ड भोजनं पानं दुष्प्रतिग्रह एव च ॥१६॥ असाक्षि भोजनं सर्वं ताम्बूल कृशरान्नयोः । अधिकं पंचभुक्तिश्च शयित्वा भुक्तिरेव च ॥२०॥ पक्षेण कूटसाक्षित्व महः संग-मनं तथा । स्वप्नेरतिर्वृथालापो ब्राह्मणानमनं मदात् ॥२१॥ विद्यापुस्त कदासीनां कन्यारस चतु-ष्पदाम् । श्रुतिस्मृति पुराणानां विक्रयो धन लोभ-तः ॥२२॥ गायत्र्या रुद्रजाप्यस्य वेदपारायणस्य च । स्वेष्ट मन्त्रजपश्चैव लोभाच्छ्रेयः समर्पणम् ॥२३॥ वृथा वार्यनिपातश्च तथा पुरुष मैथुनम् ।

मानसं वाचिकञ्चापि पर्वमैथुनमेव च ॥२४॥ पलांडुल सुनालांबु गृञ्जनानां च भक्षणम् । स्नान संध्योपासनादि रहितं भोजनश्चयत् ॥२५॥ वैश्वदेव विहीनञ्चाहन्येवापर भोजनम् । कुपंक्ति भोजनं चैव स्त्र्यादिभिः सहभोजनम् ॥२६॥ वटार्काश्वत्थपत्रेषु परकांस्ये तथायसे । आपोशानादिरहितं भोजनं सति संभवे ॥२७॥ एकादशे भोजनञ्चैकादश्यांच संध्ययोः । म्लेच्छादि नीच जातीनां सेवनं यदि लोभतः ॥२८॥ जलेशौचं शुद्धभूमौ मलमूत्र विसर्जनम् । कामतः क्रोधतोवापिलोभतोमोहतस्तथा ॥२९॥ दंभतोऽहं कृतेश्चापि निषिद्धाचरणं च यत् । गरदाग्नि दानेच ह्याक्षेपः क्रोधतोगुरोः ॥३०॥ प्रतिश्रुता प्रदानं च कर्मणावच साधिया । विवाहे धर्म कार्येच विघ्नाचरण मीर्ष्यया ॥३१॥ कपिलापयसः पानं पुष्पिणी गमनन्तथा । मातुलानी स्वसास्वश्रूः रानुजी चस्नुषा तथा ॥३२॥ आचार्य भार्यासाध्वी च सवर्णा ह्युत्तमांगना । तनया शरणं प्राप्ता सपत्नी जननी तथा ॥३३॥ गुरुतल्पगतं तुल्यं ह्येतासुगमनं हियत् । भृतकाध्यापनञ्चैव परिवेतृत्व मेवच ॥३४॥ वार्धुष्यं व्रतलोपञ्चा याज्ययाजनमेव च । नक्षत्र

सूचिताश्रम पौरोहित्यं तथैव च ॥३५॥ पितृ मातृ सुतस्त्रीणामुपाध्यायस्य सद्गुरोः । त्यागोऽनाश्रम वासश्च परान्न परिपुष्टता ॥३६॥ गुणानांगर्हणं चैव दोषस्योद्भावनन्तथा। निष्ठुरं भाषणं नित्यं तथैवा- नृतभाषणम् ॥३७॥ वेदानध्ययनञ्चैव पठितानाञ्च विस्मृतिः। माता पित्रोरशुश्रूषा तद्वाक्याकरणन्तथा ॥३८॥ अनाहिताग्निता चापि तथा विष्णोरपूज- नम् । पाणिग्रहण मारभ्य स्वधर्मा परिपालनम् ॥३९॥ साधूनांपीडनं दुष्ट पतितानांच पालनम्। पर कार्य्या- पकरणं पर द्रव्योपजीवनम् ॥४०॥ इत्यादि सर्व पापानां सकृदावृत्तितोऽपिवा। अद्भिः स्नानं यथा संख्यं सर्वेषामपनुत्तये ॥४१॥ अंतःकरण शुध्यर्थं माधवप्रीति काम्यया। षडब्दं त्र्यब्दकं वापि ह्यब्दं सार्धाब्द मेयवा ॥४२॥ एकाब्द कृच्छ्र रूपं वा यथा- शक्ति यथाविधि । यात्राहोमजपस्नान द्विजद्रव्या- दिमार्गतः ॥४३॥ सविधे माधवस्याद्य ब्राह्मणानाम- नुज्ञया । एतदन्य तमः प्रायश्चित्ताचरणपूर्वकम् । अहं स्नानं करिष्ये च गंगायमुनसंगमे ॥४४॥ इति संकल्प्य त्रिःस्नायात् प्रवाहाभिमुखं कृती। संध्यां कृत्वा क्षौरसंकल्पः। कायिकवाचिकमानसिक पाप- क्षयार्थमात्मनः क्षौरं कारयिष्ये ।